प्रस्तावना

प्राचीन काल से भारत विविध धर्मों एवं संस्कृतियों का देश है। इस देश में हिन्दू और इस्लाम दो ऐसे प्रमुख धर्म हैं जिसके मध्य साहचर्य और टकराव दोनों की स्थिति हमेशा बनी रहती है। भारत में इस्लाम के आगमन और उसके फैलाव ने भारतीय समाज में निश्चित तौर पर उथल-पुथल मचा दिया। मुस्लिम शासक जिस क्रूरता के साथ भारत पर आक्रमण किया और यहाँ के हिन्दुओं के साथ अमानवीय व्यवहार किया उसकी छाप हिन्दू के मानस पटल से कभी नहीं मिटी। इतिहास में कुछ शासक ऐसे भी ज़रूर हुए जो हिन्दू-मुस्लिम के मध्य सौहार्दपूर्ण स्थिति बनाये रखने की कोशिश की। कबीर, रहीम, जायसी, रसखान जैसे मुस्लिम साहित्यकार भी हुए जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से इस रिश्ते को बल प्रदान किया। परन्तु अंग्रेजी सत्ता के स्थापित हो जाने के बाद हिन्दू-मुस्लिम वैमनष्य में निरंतर वृद्धि होने लगी। निश्चित तौर पर इसमें उपनिवेशवादी सत्ता का भी हाथ था। अंग्रेजों ने 'बाँटों और राज करो' की नीति अपनाते हुए सदैव यह कोशिश की कि हिन्दू-मुस्लिम में टकराहट की स्थिति हमेशा बनी रहे ताकि भारतीय निवासी कभी एकजुट न हो सके एवं उनकी सत्ता महफूज रह सके। अंततः भारत की आजादी विभाजन की कीमत पर प्राप्त हुई। विभाजन ने दोनों धर्मों के बीच गहरी खाई को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप लगातार दोनों धर्मों के मध्य साम्प्रदायिक उन्माद होता रहा। साम्प्रदायिकता की इस आग में समय-समय पर असंख्य लोगों की जान जाती रहीं। दोनों धर्मों के मध्य की दूरियों का उचित लाभ राजनीतिक पंडित उठाते रहें।

हिंदी उपन्यासों में इन दो धर्मों के मध्य की समरसता और वैमनस्यता लगातार कथा का हिस्सा बनता रहा है। साथ ही यह भी कोशिश होती रही कि साम्प्रदायिकता की समस्या ख़त्म हो तथा हिन्दू-मुस्लिम के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंध का विकास हो। खास तौर पर प्रेमचंद के उपन्यासों में इस तरह की कोशिश पुरजोर तौर पर देखि जा सकती है। बच्चपन से ही हमारे मस्तिष्क में यह बात बैठा दी गई थी कि हिन्दू-मुस्लिम दोनों एक-दूसरे के हितैषी नहीं है। यही कारण था कि

बचपन में मुस्लिम बाहुल इलाके में जाने से डरता था लेकिन ज्यों-ज्यों मस्तिष्क का विकास हुआ एवं अध्ययन करता गया तब पता चला कि हमारे मन में जो डर था वह वाजिब नहीं था। राजनीतिक फायेदे के लिए आज भी जनसाधारण के मन में एक-दूसरे के प्रति डर की भावना पैदा की जाती है जिसका लाभ केवल नेताओं को प्राप्त होता है। कुल मिलाकर हिन्दू-मुस्लिम एक ऐसा मुद्दा है जिस पर गंभीरता से बात करने की ज़रूरत महसूस करता था। उनकी संस्कृति एवं परिवेश को जानने समझने की इच्छा थी। यही कारण है कि मैंने पीएच. डी. शोध-कार्य हेतु "स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन (1947-1975)" विषय का चयन किया।

शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय का संबंध हिंदी उपन्यास के विकास में मुस्लिम अस्मिता से है। इस अध्याय के प्रथम उपअध्याय में प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में मुस्लिम अस्मिता को रेखंकित करने की कोशिश की गई है। आरंभिक उपन्यासों में छिटपुट रूप में मुस्लिम पात्र नज़र आता है। कुछ उपन्यासों में मुस्लिम पात्र सिर्फ खलनायक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। ऐसा संभवतः पूर्वाग्रहों से ग्रसित होकर चित्रित किया गया है। द्वितीय उपअध्याय में प्रेमचंद युगीन उपन्यास का अध्ययन किया गया है जिसमें यह पाया कि प्रेमचंद युगीन उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से हटकर लिखा गया है। इन उपन्यासों में मुस्लिम पात्रों का साम्प्रदायिक सौहार्द की दृष्टिकोण से चित्रण किया गया है। प्रेमचंद भारतीय समाज में हिन्दू-मुस्लिम एकता को सुदृढ़ करने की मनसा से इस तरह के पात्रों का अंकन किया है। वे किसी तरह की कट्टर मानसिकता का समर्थन नहीं करते थे। उनके लगभग उपन्यास दोनों धर्मों के मध्य सौहार्द स्थापित का कार्य करता है। तृतीय उपअध्याय में प्रेमचंदोत्तर उपन्यास में मुस्लिम मानस को देखने समझने की कोशिश हुई जिसमें यह पाया कि इस समय तक के उपन्यासों में प्रेमचंद की तरह ही मुस्लिम पात्रों का मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण से ही चित्रित होता रहा है। चतुर्थ उपअध्याय में स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का अध्ययन समाहित है जिसमें प्रमुख रूप से यशपाल एवं भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों के माध्यम से जाना जा सका कि इनके

उपन्यासों में भी पूर्वर्ती उपन्यासों की तरह ही मुस्लिम पात्रों को जगह तो अवश्य प्राप्त हुई लेकिन मुस्लिम समाज के परिवेश का सम्पूर्ण अंकन नहीं हो सका। इन उपन्यासकारों के उपन्यासों में मुस्लिम पात्र यथार्थ रूप में बड़े विजन के साथ प्रस्तुत होते नज़र आते हैं लेकिन उनके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। पंचम उपअध्याय में साठोत्तरी उपन्यासों का अध्यन किया गया है। साठ के बाद के उपन्यासों में पहली बार मुस्लिम लेखक और मुस्लिम समाज अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ प्रस्तुत होता है। प्रमुख रूप से शानी, राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, इब्राहीम शरीफ़ एवं मेहरुन्निसा परवेज़ का नाम लिया जा सकता है। इन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मुस्लिम समाज की वास्तविक समस्या, संस्कृति, आर्थिक, राजनीतिक सभी पक्षों का उजागर किया है। इस समय कमलेश्वर के 'लौटे हुए मुसाफिर' और भीष्म साहनी का 'तमस' मुस्लिम अस्मिता की दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण उपन्यास है। षष्ठम उपअध्याय में समकालीन उपन्यासों का अध्ययन-विश्लेषण समाहित है। समकालीन उपन्यासों में प्रमुख रूप से मंजूर एहतेशाम का उपन्यास 'सूखा बरगद' तथा अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' का नाम लिया जा सकता है जिसमें मुस्लिम समाज की आन्तरिक समस्याओं का अंकन हुआ है। 'झीनी झिन बीनी चदरिया' उपन्यास में बनारस के मुस्लिम बुनकर समाज का कारुणिक चित्रण हुआ है जिसमें यह दर्शया गया है कि बुनकर समाज की आर्थिक स्थिति कितनी दयनीय है। उनके साथ पूंजीपति वर्गों का अमानवीय सुलूक कितना मर्मान्तिक है।

शोध-प्रबंध के दूसरे अध्याय का शीर्षक है स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य और मुस्लिम समाज। दूसरे अध्याय के प्रथम उपअध्याय में स्वातंत्र्योत्तर भारत का आर्थिक परिदृश्य और मुस्लिम समाज का आर्थिक परिदृश्य पर लेखन किया गया है। आजादी के बाद भारत की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय एवं सोचनीय थी। जाहिर है कि जब देश की आर्थिक स्थिति ख़राब होती है तो उसका सीधा प्रभाव जनता के उपर पड़ता है। मुस्लिम समाज भी इससे अछूता नहीं रह सका। सच्चर कमिटी की रिपोर्ट बताती है कि मुस्लिम समाज प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है।

उसकी आर्थिक स्थिति बहुत ख़राब है, वह शैक्षिक रूप से भी पिछड़े हैं जिसके कारण गरीबी और अधिक मात्रा में बढ़ रही है। दूसरे उपअध्याय में मुस्लिम समाज की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है जिसमें इस समाज की राजनीति में औसत से कम भागीदारी नज़र आती है। सत्ता में भागीदारी कम होने के कारण भी इस समाज के विकास में अवरोध पैदा होता आ रहा है। मुस्लिम रचनाकारों की रचनाओं में भी मुस्लिम समाज राजनीतिक दृष्टिकोण की व्याख्या कम नज़र आती है। तीसरे उपअध्याय में सामाजिक परिदृश्य पर चर्चा की गई है जिसमें मुस्लिम समाज की आजादी के बाद की सामाजिक परिस्थिति का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। अन्य समुदायों की तरह मुस्लिम समाज में भी पुरानी रूढ़ परम्पराएँ, अन्धविश्वास, बहु-विवाह, स्त्री-पुरूष संबंधों की विविधता, जाति-व्यवस्था, पितृसत्ता जैसी सामाजिक समस्याएं व्याप्त हैं। चतुर्थ उपअध्याय में मुस्लिम समाज के धार्मिक परिदृश्य को रेखांकित किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि इस्लाम धर्म का जन्म और भारत में उसका आगमन एवं फैलाव कैसे हुआ तथा आजादी के बाद इस्लाम धर्म की परिस्थिति क्या थी। पंचम उपअध्याय में सांस्कृतिक परिदृश्य पर बात की गई है। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से मुस्लिम समाज समृद्ध है। इनके यहाँ ईद, मुहर्रम, शबे बरात की फातिहा जैसे त्योहारों को धूम-धाम से मनाया जाता है।

शोध-प्रबंध का तीसरा अध्याय है स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकार और उनके प्रमुख उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण। तृतीय अध्याय को पाँच उप अध्यायों में विभक्त किया गया है जिसमें राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, गुलशेर खाँ शानी, इब्राहीम शरीफ़ एवं मेहरुन्निसा परवेज़ जी का जीवन परिचय एवं उनके उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण समाहित है।

शोध-प्रबंध का चौथा अध्याय है- स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में मुस्लिम समाज के प्रश्न। इस अध्याय में मुस्लिम उपन्यासकारों के प्रमुख उपन्यासों का अध्ययन-विश्लेषण समाहित है। प्रथम उपअध्याय में साम्प्रदायिकता की समस्या एवं अलगावाद की समस्या को चित्रित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में विशेषकर विभाजन की पृष्ठभूमि पर

लिखे गए उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की समस्या और विभाजन की त्रासदी अधिक दिखाई पड़ती है। यह एक ऐसी समस्या है जो वर्तमान भारत में भी सक्रिय है। आजादी के कुछ वर्ष पहले से ही साम्प्रदायिकता की समस्या अपने चरम पर पहुँच चुकी थी। यही कारण था कि भारत को अविभाजित रख पाने में तत्कालीन बुद्धिजीवी असमर्थ रहा। द्वितीय उपअध्याय में विभाजन की त्रासदी पर चर्चा की गई है जिसमें यह दिखाया गया है कि भारतीय कांग्रेस विभाजन के खिलाफ थी परन्तु लीगियों ने परिस्थिति को बिल्कुल विपरीत बना दिया था जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों से जल्द से जल्द सत्ता का हस्तांतरण करवाने हेतु एवं भारत को अधिक क्षति होने से बचाने के लिए ही सरदार वल्लभ भाई पटेल और नेहरू ने यह फैसला लिया था कि पाकिस्तान का निर्माण हो जाने दिया जाए। विभाजन की त्रासदी का असर भारत में शेष मुस्लिमों के जीवन पर पड़ता दिखाई देता है। इस समाज का अंकन मुस्लिम रचनाकार अपने उपन्यास में किया है। इब्राहीम शरीफ़ विभाजन की त्रासदी को झेल रहे बिहार के बिहारी मुस्लिम समाज के माध्यम से समस्त भारत के मुसलमानों की त्रासदी कही है। छाको ऐसा ही पात्र है जो विभाजन और उसके दंश को झेलता है। उसे अपने ही मुल्क में रहने के लिए जद्दोजहद करनी पड़ती है। तृतीय उपअध्याय में मुस्लिम समाज की अशिक्षा एवं आर्थिक दुरावस्था का अध्ययन किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों द्वारा लिखे गए उपन्यासों में अशिक्षा एक बहुत बड़ी समस्या बनकर सामने आई है। लगभग सभी मुस्लिम उपन्यासकारों ने इस विषय पर अपनी कलम चलाई है। राही मासूम रज़ा के 'आधा गाँव' में अशिक्षित पात्र मौजूद हैं। विशेषकर स्त्री पात्र शिक्षा से वंचित है। शिक्षा के अभाव में महिलाएँ बेरोजगार रह जाती हैं। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति इतनी ख़राब है कि वह रोजगार के नाम पर मजदूर तक ही सीमित रह जाती हैं। शिक्षा के अभाव में इन्हें सम्मान जनक रोजगार नहीं मिल पाता है। इसका एक कारण राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम होना भी है। दरअसल 'आधा गाँव' में जमींदारों की कथा कही गई है जिनके यहाँ शिक्षित व्यक्तियों की संख्या कम नज़र आती हैं, परन्तु यह निम्न मध्यवर्ग की कहानी है जिसकी

आर्थिक स्थिति स्वतंत्रता से पहले अच्छी रहती है। चतुर्थ उपअध्याय में मुस्लिम समाज की स्त्रियों की स्थिति का अंकन किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में स्त्री पात्रों का स्वरूप बदलता हुआ दिखाई देता है। साहित्यकारों ने पितृसत्ता की व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया है। मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दशा अन्य समाज की स्त्रियों से अधिक चिंताजनक दिखाई देती है। इस समाज में चार-चार शादी करने तक की छूट है जिसके कारण स्त्रियों के जीवन में बहुत सारी दिक्कतें आती रहती हैं। राही ने अपने उपन्यासों में दिखाया है कि शायद ही ऐसा कोई मर्द है जो एकाधिक शादी नहीं करता है। किसी की बीवी को उठा ले आना आम बात है। उपन्यास में फुनन मियाँ दूसरे की पत्नी को अपने घर उठा लाता है और ताउम्र उसे अपने साथ रखता है। 'काला जल' में भी बब्बन के पिता का संबंध किसी गैर स्त्री से होने के कारण बब्बन की माँ परेशान रहती हैं उसे मारा-पीटा जाता है। मुसलमानों में तलाक की समस्या भी गंभीर समस्या है। थोड़ी-थोड़ी बात में ही इस समाज में बिना कानून के ही तलाक दे दिया जाता है। 'आधा गाँव' उपन्यास में तलाक की इस समस्या को भी उठाया गया है। तलाक के बाद स्त्रियों की दशा दयनीय हो जाती है। इसका चित्रण उपन्यास में देखने को मिलता है। इसके अलावा स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में घरेलू हिंसा की शिकार स्त्रियों का चित्रण किया गया है। 'काला जल' उपन्यास में रशीदा के चाचा पालन-पोषण के आड़ में रशीदा का यौन शोषण करता है जिसके कारण रशीदा आत्महत्या कर लेती है। छोटी फूफी का ससुर भी उस पर ललचाई हुई नज़र रखता है। रज्जू मियाँ अनाथ लड़की मालती को बचपन में अपने घर ले आता है और जब वह जवान होती है तब उसके साथ ही यौन संबंध स्थापित करता है। मालती गर्भवती हो जाने कारण घर से निकाल दी जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्रियों की दशा सोचनीय एवं दयनीय है। इस समाज की स्त्रियाँ अनपढ़ होने के कारण पुरुषों की मनमानी का शिकार होती हैं। उसे अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है न ही उसमें विरोधी स्वर ही आ पाया है। छिटपुट महिलाएं जो भी विरोध प्रकट करना चाहती हैं उन्हें मजहब का हवाला देकर चुप करा दिया जाता

है। धार्मिक दबावों के कारण मुस्लिम महिलाएं पितृसत्तात्मकता से मुक्ति में असमर्थ दिखाई देती है।

शोध-प्रबंध का पंचम अध्याय है- स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में मुस्लिम समाज के अन्य प्रमुख विषय। इसके प्रथम उपअध्याय में मुस्लिम समाज की जातिगत संरचना को केंद्र में रखकर लेखन-कार्य किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों द्वारा लिखे गए उपन्यासों में जातिगत समस्या पर लिखा गया है। राही मासूम रज़ा जी 'आधा गाँव' में जातिवाद की समस्या को तल्ख़ सच्चाई के साथ उठाया है। जातीय भेदभाव की समस्या हिन्दू समाज की तरह मुस्लिम समाज में भी व्याप्त है। द्वितीय उपअध्याय में मुस्लिम समाज का वर्गीय भेद को समझा गया है। भारत में मुख्यतः वर्ग आर्थिक आधार पर तीन भागों में विभक्त हुआ दिखाई पड़ता है। उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग। भारतीय समाज की वर्गीय-संरचना को समझना एक महत्वपूर्ण एवं जटिल कार्य है। इसे समझने के लिए जाति और वर्ग में अंतर को भी समझना आवश्यक है। जाति का संबन्ध जन्मगत होता है वहीं वर्ग का सम्बन्ध अर्थ से है जिसे अर्जित किया जाता है। जाति बदली नहीं जा सकती है। जिस जाति, कुल में जिसका जन्म होता है वह उसी जाति अथवा वंश का हो जाता है परन्तु वर्ग कर्म के आधार पर आधारित होता है। वर्ग की सदस्यता कमाई जा सकती है। इसमें कोई भी अपनी वर्गीय स्थित कर्म के अनुसार बदल सकता है। एक ही जाति में कई अलग-अलग वर्ग हो सकते हैं ठीक उसी तरह एक वर्ग के अन्दर अलग-अलग जातियाँ हो सकती हैं। भारतीय सामाजिक सन्दर्भ में वर्ग और जाति एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी कुछ मामलों में एक-दूसरे के काफी क़रीब हैं। भारत की सामाजिक संरचना को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के जो उच्च एवं मध्य वर्ग है उसमें निम्न जाति के लोग बहुत कम हैं अथवा नहीं के बराबर हैं। उदाहरणस्वरूप भारत में जिसे निम्न जाति कहा जाता है जैसे डोम, चमार, दुसाध, नाई, तेली, भर, माली, मल्लाह, जुलहा आदि वर्गीय दृष्टिकोण से भी निम्न वर्ग में ही आता है। इनका न वर्ण ऊँचा है न वर्ग। ध्यातव्य है कि जो निम्न जाति में जन्म

लेता है उसकी वर्गीय स्थिति अधिकांश निम्न वर्ग की ही रह जाती है। इस तरह हम देखते हैं कि वर्ग और वर्ण दोनों एक-दूसरे को कई मायनों में प्रभावित करता है। आजादी के बाद भूमि सुधार कानून के परिणामस्वरूप सन् 1950 में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ। सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश में जमींदारी प्रथा को समाप्त किया गया। जमींदारों की जमीन पर काम कर रहे भूमिहीन किसानों को भूमि मिल गई जिसके कारण जमींदारों की आर्थिक स्थिति ख़राब हो गई। राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में इसी वर्ग का चित्रण किया है। भले ही आजादी के बाद इस वर्ग की स्थिति ख़राब हुई हो लेकिन आजादी के पहले मुस्लिम जमींदार, जमींदारी प्रथा का लाभ उठा रहे थे और सर्वहारा वर्ग पर लगातार जुल्म ढा रहे थे। राही ने दिखाया है कि जो निम्न वर्ग के मजदूर थे उनकी स्थिति बदहाल थी। जमींदार वर्ग इन मजदूरों का शोषण करते थे। तृतीय उपअध्याय का संबंध भारतीयता एवं लोकतंत्र से है। इस अध्याय में मुस्लिम समाज की भारतीयता पर उठते सवाल को दिखाया गया है साथ ही उसे खारिज़ करते हुए मुस्लिम लेखक यह सिद्ध करते नज़र आते हैं कि मुस्लिम समाज हर तरह से भारतीय संविधान को मानते हैं एवं वतन के प्रति समर्पित है। मोहसिन कांग्रेस के लिए काम करता है यह बात अलग है कि उसे गाँव के लोगों का साथ नहीं मिल पाता है और आजादी के बाद उसे ही दोयम दर्जे की नागरिकता प्राप्त होती है। शानी अल्पसंख्यकों के इस दर्द से बहुत आहत थे इसीलिए उनके पात्र भी वतनपरस्ती के कठिन सवालों से होकर गुजरता है। यह सवाल इतना कठिन और तीक्ष्ण है कि भारत के सभी अल्पसंख्यकों को उससे होकर ही गुजरना पड़ता है।

षष्ठम एवं अंतिम अध्याय का संबंध उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प से है। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों की भाषा सरल-सहज एवं स्थानीय रंग से रंगी हुई है। अधिकांश उपन्यास ग्रामीण परिवेश पर आधारित हैं जिसके कारण गाँवों की सहज-सरस भाषा यहाँ अभिव्यक्त हुई है। इन उपन्यासकारों की भाषा में हिन्दुस्तानी भाषा देखने को मिलती है। कथा के परिवेश के अनुसार स्थानीय बोलियों का सुन्दर इस्तेमाल हुआ है जिसमें मगही,

भोजपुरी बहुतायत रूप में समाहित है। इसके अलावा उर्दू, फारसी, अरबी भाषाओं के शब्दों को भी ज़रूरत के अनुसार प्रयोग में लाया गया है। इन उपन्यासकारों ने जिस दौर में उपन्यास लिखे वह साहित्यिक रूप से परिवर्तन का काल माना जाता है। 'नई कहानी' आंदोलन के बाद साहित्य में सहानुभूति और सहजानुभूति के आधार पर संवेदनाओं की अभिव्यक्ति होती दिखाई देती है। नये परिवेश की अभिव्यक्ति के कारण नयी भाषा और शिल्प की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। यही कारण है कि इन उपन्यासकारों में विशेषकर राही जी, शानी जी एवं बदीउज्जमाँ जी अपने उपन्यासों में पारम्परिक शिल्प को त्यागकर नए शिल्प को प्रयोग में लाते दिखाई देते हैं। जबकि मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यासों में पारम्परिक शिल्प नज़र आता है।

इस शोध-प्रबंध के लेखन के दौरान मेरी यह कोशिश रही है कि मैं स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकरों के उपन्यासों को बिना किसी पूर्वग्रहों से गर्सित होकर विवेचित एवं विश्लेषित कर सकूँ। शोध-कार्य के दौरान मैंने यह प्रयत्न किया कि चयनित उपन्यासों में मुस्लिम समाज के सम्पूर्ण परिवेश को उद्घाटित कर सकूँ। जहाँ भी मैंने स्थापनाएं दी हैं उसकी वजह को उल्लेखित किया है तथा महत्वपूर्ण उद्धरणों से अपनी बातों की प्रमाणिकता को बनाये रखने की कोशिश की है। हिन्दू-मुस्लिम संबंध एक संवेदनशील मसला है साथ ही आजादी के बाद के भारत के मुसलामानों की परिस्थिति को समझना भी महत्वपूर्ण है। अतः इस पर गहन अध्ययन की मांग होती रही है। इस क्रम में यदि यह शोध-प्रबंध मुस्लिम समाज के परिवेश को तनिक भी उजागर कर पाया है तो मैं अपने इस परिश्रम को सार्थक समझूंगा।